भारतीय संस्कृति और परम्परा में नारी

—प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

भारतीय संस्कृति और परम्परा में नारी के स्थान और महत्त्व को लेकर अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। वैदिक काल, श्रमणसंस्कृति, ब्राह्मण, पौराणिक और मध्ययुग तक उसकी सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति पर अनेक आक्षेप किये गये हैं। इन सबका काफी निराकरण हो चुका है फिर भी अब तक धूमिलता व्याप्त है।

वैदिककाल को ही लें। ऋग्वेद में ही अनेक तत्वों की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं, जिन्हें देव-माताएँ या देव-कन्याएँ कहा गया है। अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, भारती, होत्रा, श्रद्धा, प्रश्नि इसके प्रमाण हैं। इनमें अदिति का ही सर्वाधिक उल्लेख है। जिस प्रकार मिश्र निवासी 'मात' और यूनानी 'थेमिस' को मानते थे, उसी प्रकार आर्य अदिति को मित्र, वरुण, आदित्य, इन्द्र आदि की देव-माता के रूप में। अदिति के साथ दिति (दैत्य माता) का भी ऋग्वेद में उल्लेख है—वह भी देवी ही मानी गयी है। इसी प्रकार वाक् को भी देवी ही गिना गया है। अम्भृण ऋषि की पुत्री वाग्देवी एक सूक्त (१०-१२५) की ऋषिका हैं और इसी प्रकार श्रद्धा भी। इला को मानव-जाति का पौरोहित्य करने वाली कहा गया है। लोपामुद्रा, घोषा आदि अनेक महिलाएँ ऋषिकाएँ थीं।

देवीकरण के साथ-साथ सामाजिक जीवन में भी नारी अत्यन्त समादृत थीं। **'गृहिणी गृहमुच्यते'** ही उनका सामाजिक आदर्श था। कन्याओं का आदर था; वे परिवार का दायित्व निभाती थीं। अविवाहित कन्या पितृ सम्पत्ति की अधिकारिणी थी। स्त्री-शिक्षा का भी यथेष्ट प्रचार था। वे वेदाध्ययन करती थीं। अथर्ववेद ने तो यह आदेश ही दिया कि वही कन्या विवाह में सफल हो सकती है, जिसकी उचित शिक्षा-दीक्षा हुई हो। हारीत ने नारियों का विभाजन ही ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू (द्विविधाः स्त्रीयः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवधवश्च) किया है।

आपस्तम्बधर्म सूत्र (१-५१-८) और यमस्मृति में भी यही आलेख है। ब्रह्मवादिनी वेदाध्ययन करती थीं और सद्योवधू विवाह। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे इतिहास में उपलब्ध हैं कि ब्रह्मवादिनी नारियों ने उत्कट पाण्डित्य का प्रमाण दिया। अनेक विद्वानों का विचार है कि वैदिक नारियाँ युद्ध में भी भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेती थीं। अगस्त्य के पुरोहित खेल ऋषि की पत्नी विश्वला इसका उदाहरण है। मुद्‌गलानी का अनेक गायों को युद्ध में जीतकर लाने का भी प्रसंग प्राप्त होता है। पति-पत्नी यजमान बनकर बराबर यज्ञानुष्ठान करते थे। सायण ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

वैदिक युग के नारी-समाज की इस स्थिति की यदि हम यूनान और रोमन समाज से तुलना करें, तो ज्ञात होगा कि हमारी संस्कृति में नारी समाज का कितना अधिक सम्मान था। डेविस ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ए शोर्ट हिस्ट्री आव विमेन' में इसका विवरण दिया है। हड़प्पा और मोहेंजदाड़ों के प्राप्त अवशेषों से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में भी स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही अपना सामाजिक दायित्व व कर्त्तव्य निभाती थीं। डॉ० शकुन्तला राव का ग्रन्थ 'विमेन इन वैदिक एज' इन सबका एक ऐतिहासिक दस्तावेज और ग्रन्थ है। यह सही है कि यत्र-तत्र नारी समाज पर उस युग में भी आक्षेप किये गये थे पर वे नगण्य हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों में वे समादृत थीं, उनका योगदान विशिष्ट था। काव्य, कला आदि में भी वे निपुण थीं। इस सन्दर्भ में लुई जेकोलियट् का अभिमत दर्शनीय है। वे लिखते हैं—'वेदों में नारी को देवी समझा गया, यही इस भ्रांति का निराकरण कर देता है कि 'प्राचीन भारतीय समाज में वे सम्मानित नहीं थीं'। यह एक ऐसी सभ्यता है जो पश्चिमी देशों से अधिक प्राचीन है और जो स्त्री को भी पुरुष के समान अधिकार व स्थान देती है।' ब्राह्मण और उपनिषद् युग में भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही। रुद्र याग, सीता याग आदि कर्म तो नारियाँ ही करती थीं। उस युग में पर्दा प्रथा का नितान्त अभाव था। बाल विवाह और सती प्रथा भी नहीं थी। फिर भी जैसा कि डॉ० ए० एल० अल्तेकर ने कहा है कि वैदिक, ब्राह्मण, व उपनिषद काल के पश्चात् नारी की सामाजिक स्थिति उतनी उत्कृष्ट नहीं रही जितनी की अपेक्षित थी। डॉ० अल्तेकर ने इसके कारणों पर गंभीरता से विचार किया है। भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी यही ह्रास हुआ। होमर के युग में स्त्री समाज का जो आदर था, वह पेटिक्लस के युग में नहीं रहा।

रामायण और महाभारत युग के पश्चात् यह ह्रास अधिक तीव्र हो गया। पुनः अल्तेकर के शब्दों में '५०० ईसा पूर्व और ५०० ईसवी का युग इस ओर ध्यातव्य है।' यही युग सांस्कृतिक दृष्टि से भी विशेष महत्त्व का है। वैदिक युग में जहाँ नारियाँ यज्ञों में प्रत्यक्ष भाग लेती थीं—इस युग में उतना नहीं। इस युग में विवाह की आयु भी घटकर कम हो गई। उपनयन संस्कार समाप्त हो गये—शिक्षा की व्यापकता भी नहीं रही—पति का आधिपत्य बढ़ गया—नियोग और विधवा विवाह भी समाप्त हो गए। इसी संदर्भ में हम श्रमण संस्कृति में नारी समाज की स्थिति पर भी विचार कर लें। पहले बौद्ध धर्म को लें। बुद्ध के कारण—चन्द्रगुप्त और अशोक के शासनकाल में नारी को समुचित आदर व सम्मान मिला। उनकी शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। थेरी भिक्खुनी इस ओर विशेष महत्त्व रखती है। बुद्ध की विमाता प्रजापति गौतमी स्वयं प्रव्रजित हुई थीं। यद्यपि प्रारम्भ में बुद्ध नारी-दीक्षा के विरुद्ध थे पर आनन्द के आग्रह और अनुरोध पर उन्होंने यह स्वीकार किया। थेर भिक्खुनियों के अध्यात्म गीतों का संकलन जर्मन विद्वान पिशैल ने किया था। राइस डेविड्स ने भी इन गीतों का अनुवाद किया। शुभद्रा, पतचार, सुमना आदि प्रसिद्ध भिक्खुनियाँ हैं। मेकनिकौल के अनुसार इन कवयित्रियों में आश्चर्यजनक समकालीन प्रासंगिकता है—आत्माभिव्यक्ति, व्यक्तित्व की अस्मिता और मुक्ति की आकांक्षा।

संक्षेप में अब हम जैन धर्म पर विचार कर लें। महावीर इस दृष्टि से अधिक क्रांतिकारी और जागरूक थे। उनके समतावादी, पुरुषार्थवादी और आत्मवादी चिन्तन का सामाजिक प्रभाव भी प्रचुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा। वैदिक युग की भाँति संतान-प्राप्ति में पुत्र और पुत्री श्रमण संस्कृति में समान रूप से देखे जाते थे। नायाधम्मकहाओ से ज्ञात होता है 'कहंणं तुमं वा दारयं वा दारियं व पया एज्जासि (१-२-४०)। बुद्ध की भाँति महावीर ने कभी नारी प्रव्रज्या में बाधा नहीं पहुँचायी। परवर्ती काल में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में यद्यपि मोक्ष को लेकर मतभेद अवश्य हो गया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार नारी भी मोक्ष प्राप्त कर सकती है, पर दिगम्बर सम्प्रदाय इसे स्वीकार नहीं करता। यही नहीं परवर्ती काल के दिगम्बर ग्रंथों में तो उसकी श्वान, गर्दभ, गौ आदि पशुओं से भी तुलना की गयी है। श्वेताम्बर परम्परा यह आवश्यक नहीं गिनती कि मोक्ष के लिए नारी को पुरुष होना अनिवार्य है। पर, श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी दृष्टिवाद के अध्ययन में नारी को मान्यता नहीं देता तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि श्रमण संस्कृति में श्रमण को जो अधिकार व दायित्व प्राप्त हैं, वे श्रमणी को नहीं। श्रमणी साधु के द्वारा कभी वंदनीय नहीं समझी गयी। (यह संघीय व्यवस्था का एक पक्ष है, शास्त्रीय विधान नहीं)।

भारतीय संस्कृति का विकास जिन आदर्शों में हुआ है उनमें नारी "सृष्टि का गौरव" और "धर्म का पावन प्रतीक" है। नर और नारी सांख्य के पुरुष और प्रकृति की भाँति हैं—शिव और शक्ति के समान वे एक दूसरे के पूरक हैं। दया, कोमलता, प्रेम, शांति और त्याग नारी के विशिष्ट गुण हैं। उसे "**जायते पुनः**" कहा गया है। पिता पुनः अपनी पत्नी ने उत्पन्न होता है—इसी से वह "**जाया**" है—वैदिक परम्परा से लेकर महाकाव्यों के युग तक जीवन के सभी क्षेत्रों में उसकी महत्ता अक्षुण्ण रही है। महाभारत की विदुला अपने पुत्र संजय से कहती है "मुहूर्तं ज्वलित श्रेयो, न तु धूमायितं चिरम्।" कौरवों के पतन का कारण ही द्रौपदी का अपमान और तिरस्कार रहा। चौदह वर्षों के उपरान्त जब श्रीराम अयोध्या लौटते हैं तब कन्याएँ ही उनका स्वागत एवम् प्रथम अभिषेक करती हैं। जहाँ याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी उनसे ब्रह्मज्ञान की याचना करती है, वहाँ शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ में भारती (पत्नी: मण्डन मिश्र) मध्यस्थ का कार्य करती है। पतंजलि ने शस्त्र निपुण 'शक्तिकीः' नारियों का उल्लेख किया है। भारहुत की मूर्तियों में वे कुशल अश्वारोही के रूप में अंकित हैं। वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश के साथ आत्रेयी भी विद्याध्ययन करती थी। वराहमिहिर ने धर्म और अर्थ के लिए नारी समाज को आवश्यक गिना। उन्होंने आक्षेप लगाया कि साधुओं ने उनके गुणों की ओर आँख बंदकर उनकी दुर्बलताओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है—

"अंगनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्य मार्गेण गुणान् विहाय।

आचार्य जिनसेन ने उन्हें सम्पत्ति में समान अधिकार दिए। उन्होंने घोषणा की—

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मुति याति कोविदैः।
नारी च तद्वती प्राप्ते, स्त्री सृष्टैरग्रिमं पदम्॥

जैन परम्परा में चन्दनबाला, राजीमती आदि अनेक नारियाँ अध्यात्म जगत की अक्षय सम्पदा हैं। डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में युवती कन्याएँ स्वच्छन्द जीवन यापन करती थीं और पतिवरण में उनकी आवाज निश्चयात्मक होती थी। उन्हें अपने पति की सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार था।

भारतीय चिन्तन में नारी को सर्वोच्च महता और मान्यता थी। उसे पुरुषाकार शक्ति के रूप में स्वीकार किया। जैन धर्म और परम्परा में भी तीर्थंकर के साथ उसकी शासन देवी रही। वह लौकिक और अलौकिक प्रेम की मंजूषा है—त्याग और आत्म-समर्पण की वह मूर्ति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृदुत्वं च तनुत्वं च पराधीनत्वमेव च।
स्त्री गुणाः ऋषिभिः प्रोक्ताः, धर्मतत्वार्थ दर्शिभिः ।।

औरों की नहीं जानता, भारतीय नारी का जीवन नर को पूर्णता देने का ही शिव संकल्प रहा है। हमारे जीवन के सारे उपक्रम इसके प्रमाण हैं। कालिदास जैसे महाकवि ने भी अपनी पत्नी के प्रथम प्रश्न 'अस्ति कश्चित् वागर्थः' से ही प्रेरित होकर कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश लिखे—ये तीनों शब्द ही क्रमशः इन तीन महाकाव्यों के प्रथम शब्द हैं। तुलसीदास की सारी राम भक्ति का मूल स्रोत रत्नावली ही थी। दो चार नहीं, ऐसे अनेकानेक उदाहरण हमारी सांस्कृतिक परम्परा की विरासत हैं। कालिदास से लेकर रवीन्द्रनाथ और प्रसाद तक भारतीय मनीषियों ने अध्यात्म और प्रेम की जो उज्ज्वल गाथा गायी है, उसमें नारी ही प्रधान और प्रमुख है। भारतीय नारी की श्रेष्ठता उसके त्याग और समर्पण में है। डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में "आदर्श नारी उस प्रेम का प्रतीक है जो हमें खींचकर उच्चतम स्थिति की ओर ले जाता है। संसार की महान कथाएँ निष्ठाशील प्रेम की ही कथाएँ हैं। कष्टों और वेदनाओं में भी निष्ठा को बनाए रखना वह वस्तु है, जिसने संसार को द्रवित कर दिया है। देवता भी विचित्र हैं—हम में जो अच्छा, भद्र और मानवोचित प्रेममय अंश है, उसी के द्वारा वे हमें कष्टों में ला पटकते हैं। हमारे पास (उपसर्ग) इसलिए भेजते हैं कि हम महानतर बातों के लिए उपयुक्त बन सकें। शताब्दियों की परम्परा ने भारतीय नारी को सारे संसार में सबसे अधिक निःस्वार्थ, सबसे अधिक आत्मत्यागी, सबसे अधिक धैर्यशील और सबसे अधिक कर्तव्यपरायण बना दिया है। उसे अपने कष्ट-सहन पर ही गर्व है"। द्रौपदी सत्यभामा से कहती है—

सुखं सुखेनैह न जातु लभ्यं दुःखेन साध्वी लभते सुखानि।

रवीन्द्र की चित्रागंदा का अर्जुन के प्रति कथन है—"नहि आमि सामान्य रमणी, पूजा करि राखिबै माथाय, से आमि नय,·······यदि पार्श्व राखौ, मोरे संकटेर पथे, दुरुह चिन्तार, जदि अंश दाओ, यदि अनुमति करो, कठिन ब्रतेर, तब सहाय होइते, जदि सुखे दुःखे मोर करो सहचरी, आमार पाइबे तबे परिचय"।

विश्वात्मा के परम चैतन्य का आधार देश, काल और रूपातीत सौन्दर्य बोध है, जो आत्मा से आत्मा को, सचराचर जगत को समष्टि चेतना से समाहित कर समत्व की मधुमती भूमिका प्राप्त करता है। कहीं वह सीता है, तो कहीं द्रौपदी, कहीं मैत्रेयी है तो कहीं गार्गी—कहीं सुजाता है, तो कहीं चन्दनबाला—कहीं राधा है, तो कहीं शिवा, कहीं शारदा हुई, तो कहीं कस्तूरबा। इतिहास में वह पद्मिनी हुई, तो कभी ताराबाई और जीजाबाई। भारत के आधुनिक पुनर्जागरण में भी भारतीय नारी समाज का योगदान कम नहीं—सांस्कृतिक परम्परा, शिक्षा, समाज-सुधार, स्वाधीनता संग्राम, कुप्रथाओं का विरोध—समाज का ऐसा कौन सा क्षेत्र रहा, जिसमें उनकी भूमिका अग्रगण्य नहीं रही हो। चारों ओर से प्रताड़ित और उपेक्षित होकर भी, उनकी साधना मानव-कल्याण का ही उद्घोष रही—विश्व चेतना की पूर्णता का। जीवन के पुरुषार्थ का मंगल सूत्र भी हमारा नारी समाज ही है। महाभारत में महर्षि व्यास को भी यह कहना पड़ा—

नाऽपराधोऽस्ति नारीणां, नर एवाऽपराध्यति।
सर्वं कार्यं पराऽध्यत्वात्, नापराऽध्यति चागना ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाराहमिहिर तो और कठोर हो गये—

जाया वा, जनयित्री वा, सम्भवः स्वीकृतौ नृणाम् ।
हे कृतघ्ना ! तयोर्निन्दा, कुर्वताव: कुतः सुखम् ।।

इन सबके परिप्रेक्ष्य में अंग्रेजी लेखक न्यूमैन का यह कथन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं—"यदि तुम्हारी आत्मा बन्धन रहित उच्चतम भूमिका पर पहुँचना चाहती है, तो उसे नारीत्व से विभूषित होना होगा, चाहे कितना ही उसमें नरत्व क्यों न हो ?"

पुष्प-सूक्ति-सौरभ————————

- ☐ आत्म-सुधार से आत्म-सेवा के साथ-साथ पर-सुधार से पर-सेवा के प्रयत्न में ही स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय है।
- ☐ क्षमा विशाल अन्तःकरण की भावाभिव्यक्ति है।
- ☐ दूसरे के दोषों के प्रति उदार और सहनशील बनना ही क्षमा है।
- ☐ क्षमा; स्नेह की शून्यता को स्नेह से भरना है।
- ☐ क्षमा एवं स्नेह वही दे सकता है, जो स्वभाव से महान् हो, समर्थ हो।
- ☐ क्षमा का शब्दोच्चार ही क्षमा नहीं है, अपितु दूसरों की दुर्बलताओं व अल्पताओं को स्नेह की महान् धारा में विलीन करने की क्षमता को ही क्षमा कहते हैं।
- ☐ जो जितना सहन कर सकता है, पचा सकता है, वह उतना ही बहादुर है, उतने ही अंश में आनन्द का उपभोक्ता है।

————————————**—पुष्प-सूक्ति-सौरभ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org